International Journal of Social Science Research (IJSSR)
Volume- 1, Issue- 5 | September - October 2024
ISSN: 3048-9490

# फणीश्वरनाथ रेणु: सिनेमाई छवियों का कृति के भीतर समावेश

सुमन त्रिपाठी

शोधार्थी, इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**सारांश:**

कोई भी पाठक रेणु की रचनाओं में उपस्थित विवरणों को देख-पढ़कर 'रेणु संसार' में प्रवेश करता है। रेणु की रचनाओं में आम जीवन का चित्रण ऐसा है कि मानो पाठक पूर्णिया जैसे चित्रों को कागज पर देखते हुए एक चरित्र बनकर वहीं खड़ा है। रेणु की रचनाओं का पर्दे पर फिल्मीकरण असफल रहा है, लेकिन यह सिर्फ सिनेमा, निर्देशकों और दर्शकों की सीमा नहीं है, बल्कि रेणु की भी है। फिल्म रूपान्तरण के लिए आवश्यक सभी तत्व रेणु साहित्य में उपलब्ध हैं। रेणु ने साहित्य में चित्रों की भाषा को बारीकी से समझा और उकेरा है।

फणीश्वरनाथ रेणु, साहित्य की दुनिया के एक ऐसे कथाकार हैं जिनकी रचनाओं ने हिंदी कथा-संसार को एक नई ऊँचाई, शैली और सम्भावनाएँ दीं। इनके द्वारा रचे संसार ने हिन्दुस्तान के आम आदमी के अक्स को उसकी अच्छाइयों, बुराइयों, परिवेश की सम्पूर्ण भंगिमाओं, लय, ताल और गन्ध के साथ उकेरा। पाठकों की संवेदनाओं को इस बारीकी के साथ अभिव्यक्त करने वाला रचनाकार सम्भवतः हिंदी साहित्य में दूसरा नहीं हुआ। इनके कथ्य-शिल्प की अद्वितीयता और नक्काशियों के कारण हिंदी कथा-साहित्य नवीन पथ पर चल पड़ा और उसे एक 'जातीय पहचान' मिली।

रेणु साहित्य में लोकतत्त्वों यथा लोकगीतों, लोककथाओं, लोकमन, लोकविश्वासों, रीतिरिवाज, लोकाचार आदि की प्रस्तुति इतनी जीवन्तता के साथ हुई है कि पाठक के समक्ष रचना का मात्र टेक्स्ट नहीं, अपितु त्रिआयामी बिम्ब प्रस्तुत हो जाता है। उनकी भाषा की गत्यात्मकता, बिम्बात्मकता और दृश्यात्मकता मिलकर जो चाक्षुष बिम्ब निर्मित करते हैं, उसमें रूप, रस, गन्ध, ध्वनि का सम्मिश्रण रहता है। उपर्युक्त प्रभाव मिलकर पाठक के समक्ष वातावरण को चलचित्र या सिनेमा की भाँति सजीव कर देते हैं। इस सम्बन्ध में कथाकार रणेन्द्र की टिप्पणी उल्लेखनीय है-

"शब्द-शिल्पी के संकल्प ने शब्दों से कथाओं का ऐसा वितान रचा कि वे पाठक की पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को उद्वेलित करने में सफल हुईं। इसलिए रेणु की रचनाओं में गद्य ही नहीं रसाता बल्कि वह चरित्रों और उनके परिवेश की अद्वितीयता, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सबको एक साथ उपस्थित करती है। दरअसल उनकी लेखनी ने अक्षरों को बलाघात दिए और शब्दों को देह दी।"

आलोचक नामवर सिंह ने रेणु के 'ठुमरी' संग्रह की कहानियों को मिश्रित शिल्प की कहानियाँ कहा है। केवल उनकी कहानियों में ही मिश्रित शिल्प नहीं मिलता, बल्कि रेणु अपनी अधिकांश रचनाओं में विभिन्न विधाओं का भी मिश्रण कर, परम्परागत लेखन का अतिक्रमण करते हैं। रचना में विभिन्न विधाओं की आवाजाही का लेखन कौशल विलक्षण सौन्दर्य पैदा कर पाठकों को सुखद आश्चर्य से भर देता है। इस सम्बन्ध में हरिकृष्ण कौल की टिप्पणी है- "रेणु की कहानियाँ शुद्ध नहीं, मिश्रित शिल्प की कहानियाँ हैं। इनमें अन्य साहित्यिक विधाओं तथा रेखाचित्र, रिपोर्ताज, गीत आदि का ही मिश्रण नहीं, साहित्येतर अलाओं जैसे फिल्म, रेडियो, संगीत, अभिनय आदि की टेकनीक का भी समावेश मिलता है। इप्स दृष्टि से रेणु, संसार के उन महान साहित्य शिल्पियों में से एक हैं, जिन्होंने

टीसिंग के शब्दों में, अपनी कला की सीमाओं का अतिक्रमण करके उसकी अन्य कलाओं के साथ सहजीविता की आवश्यकता अनुभव की है।"

रेणु की रचनाएँ विभिन्न पाठक समूहों में लोकप्रिय रही हैं। उन्होंने साहित्य के पाठकों के साथ ही सिनेमा के सर्जकों को भी गहरे प्रभावित किया। उनकी कहानी 'मारे गए गुलफाम' का गीतकार शैलेन्द्र के मनःमस्तिष्क पर ऐसा असर हुआ कि वे उस पर फिल्म बनाने की दिशा में सक्रिय हुए। ऐसा पहली बार नहीं हुआ था। हिंदी सिनेमा और हिंदी साहित्य के बीच का रिश्ता बहुत पुराना है। सिनेमा अपने जन्म के समय से ही कहानियों के लिए साहित्य की ओर आकर्षित होता रहा है। दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित भारत की प्रथम फीचर फिल्म 'राजा हरिश्चन्द्र', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक 'हरिश्चन्द्र' से प्रेरित थी। हिंदी के लोकप्रिय लेखक प्रेमचन्द की रचनाओं पर भी फिल्में बनाई गईं। भगवतीचरण वर्मा, विमल मित्र, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय, अमृतलाल नागर, गोपालदास नीरज जैसे साहित्यकार भी सिनेमा की चकमक दुनिया से आकर्षित हुए।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास पर बनी फिल्म 'चित्रलेखा' और शरतचन्द्र के उपन्यासों पर 'देवदास', 'परिणीता', 'साहिब, बीबी और गुलाम', केशव प्रसाद मिश्र के उपन्यास पर आधारित 'नदिया के पार', मन्नू भंडारी की कहानी पर 'रजनीगन्धा', यशपाल के उपन्यास पर 'खामोष पानी' और विजयदान देथा की कहानी पर 'पहेली' जैसा सफल फिल्मी रूपान्तरण भी हुआ है। इक्कीसवीं सदी में आकर भी यह सिलसिला जारी रहा और अमृता प्रीतम, कृष्ण चन्दर, काशीनाथ सिंह आदि साहित्यकारों की रचनाओं पर क्रमशः 'पिंजर', 'पेशावर एक्सप्रेस', 'मोहल्ला अस्सी' नाम से फिल्में बनीं। इनमें से अधिकांश फिल्मों को बॉक्स ऑफिस पर दर्शकों की भीड़ नहीं मिली। इन असफलताओं के पीछे विभिन्न लोगों के अपने-अपने मत हैं। कोई साहित्य के फिल्मी रूपान्तरण को असफल करार देता है, तो वहीं कोई दर्शकों की समझ पर प्रश्नचिह्न लगाता है।

साहित्य और सिनेमा में विधागत अन्तर है। साहित्य शब्दों पर आश्रित है, तो फिल्म दृश्य-श्रव्य माध्यम है। साहित्य से इतर, सिनेमा को कला-पक्ष के साथ-साथ तकनीकी पक्ष को भी साधना होता है। साहित्य पाठक की कल्पना को निर्बाध छोड़ देता है, जबकि सिनेमा उसका दोहन करता है। किसी कहानी का कथानक पाठक को यह अवसर देता है कि वह उसका वातावरण और परिदृश्य अपनी कल्पना के सहारे सृजित कर ले, लेकिन दृश्य माध्यम होने के चलते सिनेमा में यह सब कुछ पहले से विद्यमान होता है। सिनेमा के निर्देशक के सामने किसी कहानी के फिल्मी रूपान्तरण की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि उसे कहानीकार के साथ-साथ पाठकों की कल्पना को भी मूर्त रूप प्रदान करना होता है। यह चुनौती तब और ज्यादा हो जाती है, जब आपको चाक्षुष बिंब के बादशाह रेणु की कहानियों का फिल्मी रूपान्तरण करना हो।

साहित्य और सिनेमा में तालमेल के अभाव के कारण कई कालजयी साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपान्तरण का बुरा हश्र हुआ। बहुत-सी रचनाओं को न तो आलोचकों की सराहना मिली, न ही दर्शकों का प्यार। कुछ फिल्मों को आमजन की लोकप्रिय पसन्द ने नकारा, परन्तु ओर चला जाता है। एक माता बच्चे को गोदी में लेकर आ रही है, हमें देखकर ठिठक गई। उसका बच्चा अवाक्-उदास आँखों से हमारी ओर देखता रहता। माँ मुँह फेर लेती है। काले-काले होंठों के बीच, सफेद दाँतों पर बिजली-सी कौंध गई- मैंने 'मूलमन्त्र' जपना शुरू किया।""

फिल्म में पटकथा लेखक अपनी सम्पूर्ण सत्ता को पूर्णतः विलीन कर, चरित्रों में प्रवेश करता है तथा चरित्रों को संवादों के माध्यम से उभारता है। रेणु भी अपनी रचनाओं में कहीं भी अनधिकार प्रवेश की चेष्टा नहीं करते। उनके पात्र ही अपने जीवन्त व्यक्तित्त्व की पूरी झाँकी प्रस्तुत करते हैं। जो साहित्य में अनुपस्थिति का आभास कराता है, रेणु के यहाँ वह भी उपस्थित है। सिनेमा की विशिष्ट क्षमता है कि उसमें पात्रों के संवाद और ध्वनि का तालमेल अभिनय के द्वारा त्रिआयामी बिम्ब निर्मित कर जीवन की साक्षात अनुभूति कराता है।

रेणु का साहित्य भी दृश्य की जीवटता और ध्वनि को शब्दों की देह में पिरोकर, भाषाई अभिनय द्वारा सिनेमा की भाँति एक सजीवे संसार उपस्थित कर देता है। रेणु की रचनाओं में इस फिल्म तकनीक के समावेश को हरिकृष्ण कौल, 'ऋणजल-धनजल' रिपोर्ताज के एक दृश्य के माध्यम से विश्लेषित करते हुए कहते हैं- "भोर के मटमैले प्रकाश में ताड़ की फुनगी पर बैठे हुए वृद्ध गिद्ध ने देखा और दूर, बहुत दूर तक गेरुआ-पानी-पानी-पानी! बीच-बीच में टापुओं जैसे गाँव-घर, घरों और पेड़ों पर बैठे हुए लोग। वह वहाँ एक भैंस की लाश। डूबे हुए पात और मकई के पौधों की फुनगियों के उस पार। राजगिद्ध पांखें खोलता है- उड़ान भरता है। हहास!" "सबसे पहले मानो ताड़ की फुनगी पर बैठे हुए गिद्ध का 'क्लोजअप' दिया गया है। फिर जैसे कैमरा 'जूमआउट' करता है और 'लांग शॉट' में दूर-दूर तक फैला हुआ पानी-ही-पानी नजर आता है। (पानी शब्द की आवृत्ति विचारणीय है) इसके बाद मानो कैमरा 'जूमइन' करके 'पैन करता है और पानी के बीच टापुओं जैसे गाँव घर, घरों और पेड़ों पर बैठे हुए लोग, डूबे हुए पाट और मकई के पौधों की फुनगियाँ, उनके पार भैंस की लाश, एक के बाद एक नजर आते हैं। तब, जैसे 'शाट' बदलता है। फिर उसी गिद्ध का 'क्लोज़ अप' गिद्ध उड़ान भरता है और कैमरा उसे 'फॉलो' करता है।"

रेणु, 'ऋणजल धनजल' में कई जगहों पर अपने पास कैमरे की कमी महसूस करते हैं। वे कहते हैं- "अभी यदि मेरे पास मूवी कैमरा होता, अगर एक टेप रिकॉर्डर होता! बाढ़ तो बचपन से ही देखता आया हूँ, किन्तु पानी का इस तरह आना कभी नहीं देखा। अच्छा हुआ जो रात में नहीं आया। अब हमारे चारों ओर पानी नाच रहा था-भूरे रंग के भेड़ों के झुंड। भेड़ दौड़ रहे हैं-भूरे भेड़। वह चाय वाले की झोंपड़ी गई, गई, चली गई। काश, मेरे पास एक मूवी कैमरा होता, एक टेप-रेकॉर्डर होता तो क्या होता? अच्छा है, कुछ भी नहीं। कलम थी, वह भी चोरी चली गई। अच्छा है, कुछ भी नहीं-मेरे पास।" किन्तु असल में रेणु की कलम चोरी नहीं गई थी और न ही कैमरे की कमी को उन्होंने अपने लेखन में बाधक बनने दिया, उन्होंने अपने सृजनात्मक दृष्टिकोण के लेंस से घटनाओं को बारीकी के साथ देखा-समझा-लिखा। उनकी रचनाओं के ब्यौरों को पढ़कर कोई भी पाठक, रेणु के संसार में प्रवेश कर जाता है। वह देशकाल की बुनावट, मिट्टी, पानी, खुशबू, चरित्रों के मनोवेगों, स्वरों, चाल-ढाल, उनके सुख-दुःख को साक्षात अनुभूत करता है। यह सब रेणु की कैमरे की नजर से ही सम्भव है।

भले ही संसाधनों की कमी ने उन्हें पूर्ण फिल्मकार न बनने दिया हो, लेकिन यह कमी उनकी ताकत बनकर उभरी है। सिनेमाई पटल के बिम्ब, कागज पर उतारने की कला उन्होंने विकसित कर ली थी। फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाओं में उपस्थित उपर्युक्त विवेचन को नागार्जुन की यह टिप्पणी पुष्ट करती है- "ऐसा उत्कट मेधावी युवक यदि कलकत्ता जैसे महानगर में पैदा हुआ होता और यदि वैसा ही सांस्कृतिक परिवेश, तकनीकी उपलब्धियों का वही माहौल इस विलक्षण व्यक्ति को हासिल हुआ रहता तो अनूठी कथा कृतियों के रचयिता होने के साथ साथ सत्यजीत राय की तरह फिल्म निर्माण की दिशा में भी यह व्यक्ति अपना कीर्तिमान स्थापित कर दिखाता।"

सन्दर्भ :

1. रणेन्द्र, रेणु के कथागायन का सौन्दर्य और सीमाएँ, आलोचना, जन-मार्च 2021 : 61 2. हरिकृष्ण कौल, फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियाँ शिल्प और सार्थकता, koausa.org

3. फणीश्वरनाथ रेणु, ऋणजल धनजल, राजकमल पेपरबैक्स, : 31

4. विजय कुमार भारती, फणीश्वरनाथ रेणु विशेषांक, बनासजन, 121

5. फणीश्वरनाथ रेणु, तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम, hindisamay.com

6. निर्मल वर्मा, समग्र मानवीय दृष्टि, ऋणजल धनजल, राजकमल पेपरबैक्स, 19

7. ऋणजल धनजल, 92

8. रेणु की कहानियाँ : शिल्प और सार्थकता, 54

9. ऋणजल धनजल, 31-32

10. तारानन्द वियोगी, रेणु और नागार्जुन, samved.sablog.in